के एक भी अपने
की हैं।

सवालीराम

पारस पत्थर से कीमियागरी तक

सवाल: पारस पत्थर क्या है? क्या सचमुच यह लोहे को सोना बना देता है?

जवाब: वैसे दो टूक जवाब यही होगा कि पारस पत्थर एक कल्पना है। सचमुच ऐसा कोई पारस पत्थर नहीं होता जिसे छूलाने से लोहा या ऐसी कोई धातु सोने जैसी धातु में तब्दील हो जाती हो।

परन्तु प्रचलित मान्यता यह है कि पारस पत्थर कुदरती तौर पर धरती में कहीं पाया जाता है। इस पत्थर से किसी धातु को छुआने पर वह धातु सोने में तब्दील हो जाती है। फिर भी यह जानना रोचक होगा कि पारस पत्थर के बारे में ऐसा विश्वास किस तरह आया और इसका फैलाव दुनिया भर में किस तरह होता गया। दुनिया की प्राचीन नगरीय सभ्यताओं (जैसे सिंधु घाटी सभ्यता आदि) से भी पहले से ही इंसान सोने का इस्तेमाल करता रहा है। सोना एक ऐसी धातु है जो शुद्ध रूप में प्रकृति में मिल जाती है व जिसका ऑक्सीकरण सामान्य परिस्थितियों में आसानी से नहीं होता। कई नदियों की रेत में सोने की अल्प मात्रा मिलती है जिसे लोग बाकी रेत कणों से अलग कर प्राप्त करते रहे हैं। सोने के साथ एक और महत्वपूर्ण तथ्य जुड़ा है कि वह प्रकृति में काफी कम मात्रा में पाया जाता है। एक मोटे अनुमान के मुताबिक पृथ्वी की ऊपरी परत (क्रस्ट) में सोना 0.004 ग्राम प्रति टन मिलता है।

शुरुआती रसायनविद

प्राचीन काल से ही धातु कर्मियों व कारीगरों की एक जमात विभिन्न धातुओं को मिलाकर मिश्र धातुओं को बनाने के प्रयास में जुटी हुई थी। इन लोगों को हम शुरुआती रसायनविद कह सकते हैं। शायद यहीं कहीं से साधारण धातुओं से सोना बनाने का ख्याल उभरा होगा। प्राचीन सभ्यताएं सोने को बेशकीमती तो मानती ही थीं, साथ ही इसे सर्वोत्तम धातु भी माना जाता था।

यहीं से अलकेमी या कीमियागरी की नींव पड़ी। अलकेमी का प्रमुख उद्देश्य था – साधारण धातुओं को सोने में बदलना। अलकेमी शब्द वैसे तो अरबी मूल का शब्द है लेकिन यह बता पाना कठिन है कि यह कहां से

आया है। इस शब्द के बारे में एक अनुमान यह है कि अरब लोग इसे 'खेम की कला' कहते थे और अरब लोग मिस्र को 'खेम' नाम से पुकारते थे। अलकेमी शब्द के बारे में एक अन्य व्याख्या के मुताबिक यह ग्रीक शब्द Chymia से निकला है जिसके मायने हैं – धातुओं को गलाने और धातुओं के मिश्रण की कला।

अरस्तू का दर्शन

ग्रीक के दार्शनिक अरस्तू की मान्यताओं के हिसाब से प्रकृति में पाए जाने वाले समस्त पदार्थ चार मूल तत्वों – आग, हवा, पानी और धरती से मिलकर बने हैं। इन चारों तत्वों की फितरत भी फर्क होती है। हरेक पदार्थ में इन मूल तत्वों की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। अरस्तू के मुताबिक आग को हवा में, हवा को पानी में, पानी को धरती में बदला जा सकता है। इसी तरह किसी धातु का इस तरह से उपचार किया जाए और उसमें इन मूल तत्वों की मात्रा में इस तरह बदलाव किया जाए कि वह सोने के मूल तत्वों की मात्रा से मेल खाए तो साधारण धातु को भी सोने में तब्दील किया जा सकता है। अरस्तू का यह दर्शन कीमियागरों के लिए मार्गदर्शन बन गया। अरस्तू के विचार इस तरह स्थापित हो गए थे कि अगली कई शताब्दियों तक इन्हें किसी ने चुनौती नहीं दी।

ईसा की पहली सदी तक आते-आते अलकेमी शुद्ध धातु संबंधी विज्ञान न रहकर इसमें ज्योतिष, रहस्यमयी विचार, जादू-टोना, आध्यात्म आदि भी जुड़ता चला गया। यही नहीं, उस समय तक विज्ञान और जादू में कोई स्पष्ट विभाजन रेखा भी स्थापित नहीं हो पाई थी। इस दौर में अलकेमी का एक और उद्देश्य सामने आया – इंसानी शरीर को रोगों से मुक्त कर अमरत्व प्रदान करना। कोशिश यह थी कि विविध रासायनिक क्रियाओं से वह रहस्यमयी पदार्थ प्राप्त किया जाए जिसे लोहे या ऐसी किसी धातु में मिलाने पर वह धातु तो सोना बन ही जाए और उसे दवा की तरह पीने पर शरीर अमर हो जाए। उस रहस्यमयी पदार्थ को फिलॉसॉफर स्टोन, दार्शनिक पत्थर, पारस पत्थर आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता था।

भारत, चीन, मिस्र, ग्रीक एवं कई यूरोपीय देशों में सैंकड़ों वर्षों तक लोग पूर्ववर्ती मान्यताओं पर यकीन करते हुए पारस पत्थर की खोज में विविध पदार्थों के गुणों को पहचानने की कोशिश में पदार्थ के पृथक्करण, गर्म करने, ठंडा करने, वाष्पीकरण, उर्ध्व-पातन, गलाने, निथारने, आसवन, सुखाने जैसी कई गतिविधियां करते थे। कई कीमियागर अपने प्रयोगों के ब्यौरे भी लिखते थे। हालांकि ये ब्यौरे

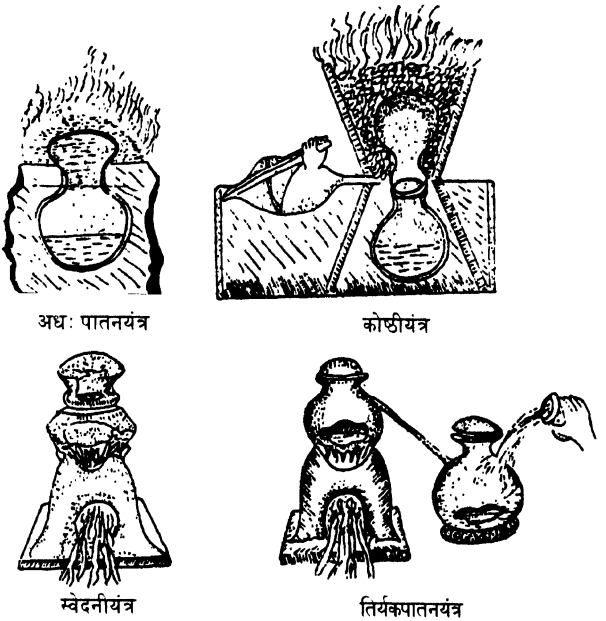

भारत के कीमियागरों द्वारा प्रयोगशाला में इस्तेमाल किए जाने वाले उपकरण

सांकेतिक भाषा में होते थे फिर भी इनमें रसायन विज्ञान को आसानी से खोजा जा सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि आधुनिक रसायन विज्ञान को कई तरह की जानकारी और सामग्री कीमियागरों ने ही दी है।

भारत में कीमियागरी

भारत में कीमियागरी की शुरुआत पहली-दूसरी सदी में हुई। धीरे-धीरे कीमियागरों के कई दल बन गए। उस समय कीमियागरी से संबंधित कई ग्रंथ लिखे गए। इन ग्रंथों में सोना बनाने की विविध रासायनिक विधियां दी गई थीं। इनमें आठ महारसों का इस्तेमाल किया जाता था। जैसे चांदी से सोना बनाने के लिए पीले गंधक को पलाश की गोंद के रस से शोधित किया जाए, फिर गंधक और चांदी को कंडों की आग पर तीन बार पकाया जाए तो कृत्रिम सोना बन सकता है। इसी तरह तांबे को सोने में बदलने की विधि भी बताई गई है। यहां कृत्रिम सोने का अर्थ है सोने के रंग जैसी धातु।

आठवीं सदी के एक अन्य भारतीय ग्रंथ 'रसहृदय' में 18 रसकर्मों की जानकारी दी गई है। इस ग्रंथ में पारे में सोने का रंग पैदा करने की विधियां दी गई हैं। ऐसे ही एक ग्रंथ 'रसरत्न समुच्च' (13वीं से 15वीं सदी) में पारे के दोषों को दूर करने की कई विधियां दी गई हैं, साथ ही रसकर्म (कीमियागरी) के उपयोग में आने वाले उपकरणों का विस्तृत वर्णन है।

और यूरोप में . . .

यदि यूरोपीय जगत पर नज़र डाली जाए तो 13वीं सदी के अलकेमिस्टों ने अपनी विधियों को चमत्कार की तरह पेश नहीं किया। वे मानते थे कि ये क्रियाएं प्रकृति में सदा चलती रहती हैं। अलकेमिस्ट इन क्रियाओं को प्रयोग शालाओं में दोहराना चाहते थे। इस समय तक लोगों को भी यह बात समझ में आने लगी थी कि अलकेमिस्टों के पास जो साधन हैं वे सोना बनाने जैसे कामों के लिए पर्याप्त नहीं हैं। यह भी माना जाने लगा कि जो कृत्रिम धातुएं बनाई गई हैं वे प्राकृतिक धातुओं के समान नहीं थीं। जैसे चांदी से बनाई गई सोने जैसी धातु रासायनिक दृष्टि से प्राकृतिक सोने जैसी नहीं थी। यह बात भी धीरे-धीरे साफ होने लगी थी कि अलकेमी धातु परिवर्तन नहीं कर सकती, मात्र नकल कर सकती है। उदाहरण के लिए किसी धातु को सफेद या पीला कर उसे चांदी या सोना नहीं बनाया जा सकता। अलकेमिस्टों द्वारा बनाए गए सोने के परीक्षण में यह पाया गया कि यह कृत्रिम सोना 6-7 बार आग पर गर्म करने के बाद सोने जैसा दिखना भी बंद हो जाता है।

अलकेमी के इतिहास में 16वीं सदी में एक नया मोड़ आता है जब ज्यूरिख निवासी पेरासेल्सस ने घोषणा की कि उसका उद्देश्य सोना बनाना नहीं है। वह इंसानी शरीर को रोग मुक्त रखने के लिए दवाइयां बनाना चाहता है। पेरासेल्सस यह मानता था कि अलकेमी का प्रमुख लक्ष्य दवाओं को तैयार करने की विधियों की खोज होना चाहिए। वह यह भी कहता था कि हो सकता है अलकेमी से सोना बनाना भी मुमकिन हो लेकिन यह एक गौण लक्ष्य होना चाहिए। इस घोषणा के बाद अलकेमी में एक नया अध्याय शुरू हुआ जिसमें रसायन की खोजों से चिकित्सा में सहयोग लिया जाने लगा; पदार्थों के गुण और मानव शरीर पर उनके प्रभावों के अध्ययन पर ज़ोर दिया जाने लगा।

20वीं सदी में

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में पदार्थों के भौतिक और रासायनिक गुणों का भली-भांति अध्ययन किया जाने लगा। तत्वों की खोज, आवर्त्त तालिका, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन

आखिरी सिक्का: अलकेमी काफी खर्चीला काम था। यदि सोना बनाने के इस काम के लिए राजकीय या किसी धनी व्यक्ति ने वित्तीय सहायता दी हो तब तो विशेष चिंता की बात नहीं थी। लेकिन अधिकांश अलकेमिस्ट अपनी पूंजी लगाकर साधारण धातु से सोना बनाने की जुगत में अपनी सारी उम्र खपा देते थे। यहां एक मध्यकालीन अलकेमिस्ट और उसकी दुखी पत्नी को दिखाया गया है। अलकेमिस्ट मियां ने अपनी सारी पूंजी इस खोज में लगा दी, फिर पत्नी के पास मौजूद सोने के सिक्कों की बारी आई। इस चित्र में पत्नी अपने पास का आखिरी सोने का सिक्का दे रही है। ज़मीन पर पड़ा खाली बटुआ भी दिखाई दे रहा है। इस सिक्के को गंवाने का दुख उसके चेहरे पर साफतौर पर देखा जा सकता है। और मियां शायद उसे दिलासा दे रहे हैं। उस दौर में अलकेमिस्टों की फटेहाल बीवियों और भूखे बच्चों के कई ब्यौरे मिलते हैं।

व रेडियो एक्टिव तत्वों की खोज हुई, अल्फा, बीटा, गामा कणों के बारे में विस्तार से जानकारियां मिलीं। पदार्थों के बारे में इतना कुछ जानने के बाद कीमियागरों के सोना बनाने की क्षमताओं पर किसी को यकीन नहीं रहा। बीसवीं सदी में रेडियो सक्रिय तत्वों के अध्ययन के साथ यह बात समझ में आई कि किसी तत्व के नाभिक से अल्फा कणों के बाहर निकल जाने से एक नया तत्व निर्मित होता है। उदाहरण के लिए यूरेनियम जिसमें

92 प्रोटॉन होते हैं, उसके नाभिक में से एक अल्फा कण निकल जाए तो यूरेनियम के नाभिक में दो प्रोटॉन कम हो जाते हैं; यानी अब 90 प्रोटॉन बच जाते हैं और यूरेनियम थोरियम में तब्दील हो जाता है। इस थोरियम के नाभिक में 90 प्रोटॉन और 144 न्यूट्रॉन होते हैं। इसी तरह बीटा कणों के बाहर निकलने से भी नया तत्व बनता है। एक तत्व से दूसरे तत्व के बनने को ट्रांसम्यूटेशन कहते हैं। प्रकृति में भी यह क्रिया चलती रहती है लेकिन धीमी गति से।

रेडियो एक्टिविटी, आइसोटॉप्स और परमाणु के नाभिक की समझ बढ़ने के साथ एक बात साफ हो गई कि पिछले दो हज़ार साल तक अलकेमिस्टों ने जो कुछ किया उससे सीसे से या लोहे से सोना क्यों नहीं बन सकता था। वास्तव में अलकेमिस्ट जो रासायनिक क्रियाएं कर रहे थे उनसे परमाणु के नाभिक में कोई बदलाव नहीं हो रहा था। ये सभी क्रियाएं परमाणु की सबसे बाहरी कक्षा के इलेक्ट्रॉन के साथ हो रही थीं। साधारण रासायनिक क्रियाओं से सीसे से सोना बना पाना मुमकिन नहीं था। हां, सोने की पॉलिश ज़रूर चढ़ाई जा सकती थी। लेकिन कीमियागरों की कोशिशों को कमतर आंकना बिल्कुल भी उचित नहीं होगा।

1919 में रदरफोर्ड ने जब प्रयोग शाला में नाइट्रोजन को ऑक्सीजन में तब्दील किया तो अलकेमिस्टों में नया जोश आ गया। इस प्रयोग में रदरफोर्ड ने नाइट्रोजन के नाभिक पर अल्फा कणों की बौछार की थी और नाइट्रोजन से ऑक्सीजन बनाकर दिखाया था।

रदरफोर्ड के प्रयोग से प्रेरणा लेने वालों में से जर्मनी का फ्रेंज़ टाउसेंड प्रमुख था। वह म्यूनिख में रसायन सहायक के ओहदे पर काम कर रहा था। उसे यकीन था कि साधारण धातुओं से सोना बनाया जा सकता है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जब हिटलर जेल में था तो नाज़ी पार्टी के लिए चंदा जुटाने का काम वॉन ल्यूडेनड्रॉफ के कंधों पर आया था। वॉन ने भी फ्रेंज़ के बारे में काफी कुछ सुन रखा था। उन दिनों म्यूनिख में यह खबर थी कि फ्रेंज़ ने सोना बनाने में सफलता प्राप्त की है। ऐसा कहा जाता था कि फ्रेंज़ ने आयरन ऑक्साइड और क्वार्ट्ज़ के मिश्रण से सोना बनाने की विधि खोज निकाली है। ल्यूडेनड्रॉफ ने एक कम्पनी की स्थापना की। इसका नाम था कंपनी-164। वह इस कंपनी का प्रमुख था और कंपनी के लाभ का 75 प्रतिशत का हिस्सेदार भी। फ्रेंज़ इस कंपनी में 5 प्रतिशत का भागीदार था। फ्रेंज़ के लिए एक बड़ी प्रयोगशाला मुहैया करवाई गई। कंपनी बड़े पैमाने पर सोना बनाकर भारी मुनाफा कमाने

सोने से पारा बनाया गया

शायद इस खबर को सुनकर कीमियागर खुश नहीं होंगे क्योंकि यह खबर उनके सपने से एकदम विपरीत जो है। पिछले दिनों ग्लासगो के स्ट्रेटलाइड विश्वविद्यालय के केन लेडिंगहेम ने बताया कि उन्होंने सोने को पारे में बदलने में कामयाबी हासिल की है।

इस प्रयोग की खासियत यह थी कि सोने से पारा बनाने के लिए लेज़र किरणों की मदद ली गई थी। इस प्रयोग में प्रयुक्त लेज़र उपकरण का नाम वल्कन था, जो आकार में काफी विशाल था – किसी छोटी-मोटी इमारत की तरह। लेडिंगहेम के साथियों ने सोने के परमाणुओं में प्रोटॉन डालकर पारे के परमाणु बना लिए।

इस प्रयोग की सफलता के बाद यह उम्मीद जागी कि क्या परमाणु भट्टियों से निकलने वाले रेडियोधर्मी कचरे को भी किसी सुरक्षित पदार्थ में बदला जा सकता है। लेज़र किरणों से एक तत्व से दूसरा तत्व बनाने में काफी ऊर्जा खर्च होती है। यहां ऊर्जा का अनुमान इस तरह से लगा सकते हैं कि एक परमाणु बिजलीघर के कचरे को निपटाने के लिए एक और बिजलीघर चाहिए होगा! ऊर्जा की विशाल खपत को देखते हुए निकट भविष्य में इस तकनीक के इस्तेमाल की संभावना थोड़ी कम ही है।

वाली थी। जल्द ही प्रचार-प्रसार के ज़रिए कंपनी ने निवेशकों को खूब आकर्षित किया। कंपनी अपने निवेशकों को शेयर के बदले काफी सोना देने वाली थी। शेयरों के बदले सोना पाने की चाहत में बहुत से लोगों ने इस कंपनी में निवेश किया। ल्यूडेनड्रॉफ ने जल्द ही एक मोटी रकम नाज़ी पार्टी फंड में डाली। 1926 में ल्यूडेनड्रॉफ ने कंपनी प्रमुख के पद से इस्तीफा देकर सारे अधिकार फ्रेंज़ को सौंप दिए। फ्रेंज़ प्रयोगशाला में लगातार काम करता रहा, लेकिन जल्द ही यह साफ हो गया कि कंपनी अपने निवेशकों को वायदे के मुताबिक सोना देने में असमर्थ है। फ्रेंज़ को दगाबाज़ी के अपराध में गिरफ्तार किया गया और चार साल कारावास का दंड दिया गया।

यहां इस किस्से का ज़िक्र सिर्फ यह संकेत देने के लिए किया जा रहा है कि अभी भी सोने को लेकर लोग दीवाने हैं। साथ ही रसायन विज्ञान की इतनी तरक्की के बावजूद आज भी काफी लोगों को यह यकीन है कि पारस पत्थर जैसी कोई चीज़ होती है जिससे सोना बनाया जा सकता है।